ISSN: 2393-8900 IMPACT FACTOR : 2.7825(UIF) VOLUME - 8 | ISSUE - 6 | FEBRUARY - 2022

HISTORICITY RESEARCH JOURNAL

आचार" में निहित विचारों का विश्लेषण

डॉ. श्रीधर पी डी
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष्य - हिन्दी विभाग,
क्रिस्तु जयन्ती कालेज, के. नारायणपुरा, कोत्तनूर पोस्ट, बेंगलूरु.

भारतीय दर्शनशास्त्र में प्रमुख रूप में तीन अंगों का विश्लेषण हुआ है- प्रमाण शास्त्र, तत्व शास्त्र और आचार शास्त्र। साथ ही भारतीय दर्शन में तीन विचारधाराओं को देख सकते हैं- ज्ञान, तत्व और आचार। आचार शब्द के अनेक अर्थ होते हैं – नीति, धर्म, कर्तव्य और नैतिकता। धर्म के जैसे 'आचार' शब्द भी व्यापक अर्थ प्रदान करता है।

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र इन तीनों की प्रगति आचार के धरातल पर होती है। आदर्श जीवन और नियमित जीवन शैली का विकास आचार पद्धति पर निर्भर रहता है। मूलत: विचार का विकास अपनी आचार से ही होता है। जिसको हम सदाचार के नाम से जानते हैं। हमारे विचार की जन्मभूमि आचार होता है। इतिहास और पुराण काल से ही 'आचार' शब्द का उपयोग श्रेष्ठ व्यवहार के आचरण के लिए होता आया है। आचार शब्द के अर्थ को देखा जाय तो, संस्कृत में कहा गया है कि - 'आचार्यते इति आचार:' इसका अर्थ जो आचरण किया जाय वह 'आचार' है। यह विश्लेषण सदाचार से संबन्ध रखता है। मनुस्मृति और व्यास मुनि के महाभारत इन दोनों अर्वाचीन ग्रंथों में "आचार: प्रथमो धर्म:"1 इसका अर्थ है-आचार को ही प्रथम धर्म माना गया है। रामायण एवं महाभारत सहित पुराण एवं भारतीय परंपरा के सभी आगम ग्रंथों का मूल 'आचार' माना गया है। इसी आचार पर ही धर्म का अस्तित्व खड़ा रहता है।

आचार हीन मानव की कल्पना करना असमंजस सा लगता है। शास्त्रीय ज्ञान और सद्गुणों के आचरण से मानव जन्म को दिव्यता और भव्यता प्राप्त होती है। आचार हीन रहेंगे तो कुबुद्धि घर कर जाएगी। विकार मानव जीवन में अशांति पैदा कर देगी। ज्ञान रहे तो वह सब कुछ समझ लेता है। मगर ज्ञान-प्राप्ति सिर्फ आचरण करने से ही उपलब्ध होती है। आचरण ही ज्ञान की अनुभूति प्रस्तुत करती है।

अनगिनत संपत्ति के अधिपति या सम्राट होने पर भी और वेदागमों को कंठस्थ करने वाले ज्ञानी होने पर भी सदाचार रहित होने से 'रावण' को राक्षस के रूप में देखा गया। जन्म नाम होने पर भी 'सुयोधन' उनके दुराचार के कारण वह दुर्योधन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आचार के परित्याग करने वाला 'कम्स' राजा होकर भी कसाई का कार्य करता रहा। इससे हमें यह एहसास होता है कि पुराण कथाओं में आने वाले पात्र उनके आचरण के कारण सब लोगों के मन-मानस पर उनके आचार पद्धति के कारण ही टिके हुए हैं। त्रेतायुग के मर्यादा पुरुषोत्तम 'राम' आदर्श व्यक्ति के रूप में, द्वापर युग के 'शकुनि' अपनी दुराचार के कारण प्रसिद्धमहापुरुष या कुप्रसिद्ध दुष्ट चरित्र के रूप में हमारे संस्कृति में प्रतिबिंबित हुए हैं।

महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है कि –

"आचारात् फलते धर्माचारात् फलते धनम्।
आचाराछ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम्।।"2

कहा जाता है कि तपस्या का मूल आचार है। वैदिक आचार्यों के अनुसार आचार से विद्या, आयु, अभिरुद्धि, कांति और कीर्ति प्राप्त होते हैं। आचार से धर्म रूपी विराट वृक्ष फलता है। इसी शुद्ध आचरण से धर्म और धन दोनों की प्राप्ति होती है। आचारशुद्धि से चित्त में

एकाग्रता प्राप्त होकर तपस्वी बन जाते हैं। इस तत्व को आधार बनाकर देखा जाए तो आचरण ही साधु का मूल गुण है तो हम यह कह सकते हैं कि सब सद्गुण और सत्पुरुषों का मूल आचार ही होता है।

पुराण साहित्य में प्रारंभ से ही सामान्य रूप में 'आचार' शब्द का उपयोग सिर्फ सदाचार के लिए ही किया गया है। पहले से सभी यह जानते थे कि आचार शब्द को सुनते ही सिर्फ सदाचार के बारे में सोचते थे। इस सदाचार शब्द में 'सत्' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह सत् शब्द आचरण की शुद्धता और श्रेष्ठता को सूचित करने वाला है। जब इन सदाचार प्रवृत्तियों के साथ कुछ सही और गलत प्रवृत्तियाँ अपने आप जुड़ने लगी तब श्रेष्ठ आचार को सदाचार और निकृष्ट आचार को दुराचार कहा गया। आगे जाकर मोक्ष या मुक्ति को ध्यान में रखते हुए अपने आचरण को ऊर्ध्वमुखी और अधोमुखी कहा गया। 'ऊर्ध्वमुखी आचार को सदाचार' और 'अधोमुखी आचार को दुराचार' माना गया। तथ्य में हम यह कह सकते हैं कि शिष्ट जन को जो सम्मत वह सदाचार और दुष्ट जन को जो सम्मत है वह दुराचार। इसका अर्थ जो आचरण के विरुद्ध है वह दुराचार है जो नियम के अनुसार है वह सदाचार है।

सदाचार ही मानव का श्रृंगार है। राग-द्वेष रहित महापुरुष को सत् आचरण करने वाले संत कहा गया है। 'आचरण' ही आचार शब्द का विस्तृत अर्थ होता है। आचार शब्द में जो 'चर' अक्षरों का उपयोग हुआ है, उसके विभिन्न अर्थ होते हैं - चर का अर्थ है चलने वाला, गति, भक्षण और धारण करने वाला। इस प्रकार 'सदाचार' शब्द भी विचार, आचार एवं उच्चार की विशुद्धता, पवित्रता तथा नियमबद्धता को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करती है। सदाचार और सद्गुणों के बीच अनमोल एवं अविनाभाव संबंध है। सद्गुणों से सदाचार प्रकट होता है और सदाचार से सद्गुण दृढ़ हो जाते हैं।

सदाचार और सच्चारित्र

सदाचार और चरित्र दोनों एक साथ चलने वाले जीवन रूपी रेल की पटरिया हैं। एक के बिना दूसरी की कल्पना करना असंभव है। सदाचार और चरित्र के बीच में शील शब्द जुड़ा हुआ है। सदाचार मानव जीवन की श्रेष्ठ संपत्ति है। सदाचारी सद्गुणी का शील अमृत समान होता है। शील और सदाचार मानव को सच्चा अर्थ प्रदान करते हैं। मनुष्य के चरित्र के अंतर्गत उसका बर्ताव, व्यवहार, रहन-सहन, जीवन के नैतिक मानदंड, उनके आदर्श, आदि सम्मिलित होते हैं। इन सब का सम्मिलित रूप ही चरित्रवान व्यक्ति है और वह समाज के सामने सदाचारी के रूप में प्रस्तुत होता है। यही सदाचारी की सच्चरित्रता मनुष्य को संघ जीवि बनाता है। इसी धरातल पर श्रेष्ठ समाज का निर्माण भी होता है।

आचार शब्द के लिए कुछ विद्वानों ने नीति शब्द का प्रयोग किया है। आचरण को ही उन्होंने 'नीतिशास्त्र' कहा है। मनुष्य में अगर नैतिकता का अभाव हो जाए तो वह पशु बन जाता है। मानव को क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, इनके लिए नीति नियम बनाए गए हैं। उनके कर्तव्य और अकर्तव्यों को निर्धारित किया गया है। इसी निर्णय पद्धति को नीति का नाम दिया गया है। इन नियमों को एकत्रित कर उसको 'नीतिशास्त्र' की संज्ञा दी गई है। इस नीतिशास्त्र में उचित और अनुचित कार्यों का उपदेश रहता है। मानव समाज में किस प्रकार जीवन यापन करें और किस प्रकार अपने चरित्र को सुधारें, इसके लिए नीतिशास्त्र में नियम लिपिबद्ध होते हैं। आदिकाल से ही मानव के नैतिक आचरण के प्रति पाबंदियाँ या नियम प्रचलित चले आ रहे हैं। सुशिक्षित समाज नीति नियमों के पालन से ही श्रेष्ठ बनता है। उच्च आदर्शों को रखकर उचित और अनुचित का परामर्श करके श्रेष्ठ जीवन को अपनाना सदाचार का द्योतक है। आचार और नीति इन दोनों शब्दों में भिन्नता होने पर भी इन दोनों का संबंध हमारे संपूर्ण जीवन के क्रियाकलापों पर निर्भर रहता है। नीति, आचार के साथ विचार को लेकर चलती है। नियमों से बना नीति देशकाल के अनुकूल होता है। मगर आचार एक शाश्वत सिद्धांत के रूप में होता है। नीति-नियम व्यक्ति और समाज के संबंधों पर जोर देती है। आचार व्यक्ति और भगवत भक्ति और मुक्ति के साथ जुड़ी हुई है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर की सत्ता को समझने के लिए आचार होता है। वहीं नीति श्रेष्ठ समाज का निर्माण करता है। विस्तृत रूप से देखा जाए तो, नीति का उद्देश्य मानव की चरित्र शुद्धि है। इसी चरित्र शुद्धि के कारण धर्म की आराधना होती है। भारतीय संस्कृति के अनुसारनीति, धर्म, समाज, आचार और चरित्र सब जुड़े हुए हैं।

नीतिशास्त्र का उद्देश्य

'नीतिशास्त्र' के अध्ययन, अनुशीलन, परिशीलन एवं रचना करने से मानव के आचरणों में सुधार नहीं आती है। उसके आचरण पर उनका कोई प्रभाव पढ़ नहीं सकता। इसीलिए नीतिशास्त्र की अध्ययन की उतनी आवश्यकता नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि आचरण के बिना नीतिशास्त्र असफल हो जाता है। मनुष्य को केवल नैतिक नियमों का परिज्ञान होना आवश्यक है, मगर अनिवार्य नहीं है। वह एक बार जीवन में सहज रूप से उन नियमों को धारण कर लेता है, तो वह सफल हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि नैतिक नियमों का ज्ञान से ज्यादा धारण करना या अपनाना अनिवार्य है। इसी धारणा-पद्धति को आचरण कहते हैं। इसी आचरण प्रक्रिया से आचार का उगम

होता है। नीतिशास्त्र के नीति नियमों का मुख्य उद्देश्य आचार को सुधारना है। समाज के बनाए हुए नियम और ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हमें जीवन का मार्ग बताता है। उस मार्ग पर चलने के लिए नीतिशास्त्र एक सेतू है। आचार और नैतिकता में श्रेष्ठ व्यक्ति ही नीतिशास्त्र का परिपालन करता है। नैतिकता का निरंतर अभ्यास करने से जीवन में परिवर्तन आ जाता है। इसी नैतिकता के आधार पर मानव अपना अच्छा और सच्चा जीवन जी सकता है। जीवन में गलत रास्तों पर ले जाने वाले विषयों पर विजय प्राप्त करने से ही जीवन में नैतिकता प्राप्त होती है। आचार जीवन में यदि क्रिया है तो, धर्म मनुष्य का किया हुआ संकल्प है। अपने संकल्पों को क्रिया द्वारा सुचारू रूप से इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए कुछ नियम होते हैं उन्हीं नियमों को नीति शास्त्रों में विश्लेषित किया जाता है। इन्हीं नीति-नियमों का धारण करने की प्रक्रिया को ही आचरण कहते हैं। वही आचरण आगे जाकर आचार बन जाता है।

आचार और विचार का विश्लेषण

विश्वभर के जितने भी विचारधारा प्रचलित हैं वह सारे आचार से ही जन्म लिए हुए हैं। आचार और विचार यह दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। व्यक्तित्व के निर्माण के लिए इन दोनों की आवश्यकता अनिवार्य है। जब तक पवित्र विचार नहीं होते तब तक आचार कतई सदाचार के रूप में नहीं बदलेगा। जिन विचारों के पीछे उन्नत आचरणों का उदाहरण है, तब तक आचार और विचार इन दोनों का विकास अपने आप हो जाता है। दर्शन का सीधा संबंध विचार और तर्क से है और धर्म का सीधा संबंध आचार और व्यवहार से है। दर्शनशास्त्र आधार, तर्क और परिमाण पर अवलंबित रहता है। धर्म श्रद्धा पर अवलंबित रहता है। विचार के लिए तर्क की आवश्यकता होती है। आचार के लिए श्रद्धा और विश्वास की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार धर्म और दर्शन एवं आचार और विचार एक दूसरे से भिन्न नहीं है। विचारों की परिपक्वता आचारों में देखी जा सकती है। इसी परिप्रेक्ष में व्यक्ति के आचार की तेजस्विता को उनके व्यक्त विचारों में देख सकते हैं। आचार और विचार का संतुलित विकास होने पर ही व्यक्तित्व का विकास होता है। भारतीय विद्वान धर्म और दर्शन, आचार और विचार इन दोनों में अनिवार्य संबंध को प्रतिपादित करते हैं। इसी कारण तत्व शास्त्र के अध्ययन के साथ आचार शास्त्र का विश्लेषण हुआ है। आध्यात्मिक सिद्धि के लिए पवित्र विचार और उत्कृष्ट आचारों की आवश्यकता है। भारतीय दर्शन शास्त्र में आचार और विचार इन दोनों को समान स्थान दिया गया है।

वेदांत में पूर्व मीमांसा आचार प्रधान है तो उत्तर मीमांसा में विचार प्रधान है। योग आचार का द्योतक है तो सांख्य विचार का प्रतीक है। बौद्ध परंपरा में हीनायान पंथ आचार क्रांति का समर्थक रहा है और महायान पंथ विचार क्रांति का समर्थक रहा है। इसी प्रकार जैन दर्शन तो आचार और विचारों को तौलता हुआ आगे बढ़ता है। जैन दर्शन में निश्चयनय मौलिकता के लिए है तो व्यवहारन्य अपने उपयोगिता के लिए है। किसी विषय की स्पष्टता का दर्शन अगर देता है तो उसके साथ व्यवहार नहीं होता, उसे आचरण करने में प्रेरणा मिल जाता है। जैन दर्शन में अहिंसा पद्धति को प्रमुख आचार और अनेकांत दृष्टि प्रमुख विचार के रूप में प्रतिपादन किया गया है। "आचार और विचार, श्रद्धा और ज्ञान साथ-साथ रहने में कोई विवाद भी नहीं है और यह कोई विसंगति भी नहीं है।"3 इसी कारण जैन परंपरा एक ओर धर्म है और विचार की अपेक्षा वह एक दर्शन भी है।

भारतीय संस्कृति में सभी विद्वान एवं दार्शनिक ईश्वर को सृष्टिकर्ता तथा सुखदुख प्रदाता मानते हैं। इसी सिद्धांत को आधार बनाकर संपूर्ण विश्व की कार्यव्यवस्था, आचार और नीति-नियम नहीं बना सकते। क्योंकि जीवन भर अनाचार करके अंत में भगवद् भक्ति करेंगे तो सब कुछ ठीक होगा, ऐसा सोच सब जीवों में घर कर जाएगा, यह सही नहीं है। हमें यहाँ कर्म सिद्धांत पर ध्यान देना होगा। नहीं तो विश्व भर में कर्मफल पर अविश्वास पैदा होकर समस्त समाज का स्वास्थ्य बिगड़ने लगेगा। भले-बुरे कर्म के उत्तरदायित्व को मनुष्य स्वयं न लेते हुए सारे जगत की कार्यविधि में होने वाले सब विचारों को भगवान के ऊपर डालकर मनमानी करने लगेंगे। इससे सृष्टि के कार्यों में विचित्रता के साथ असमतोलन महसूस होने लगेगी। 'उत्तराध्ययन' के एक प्राकृत श्लोक में कहा गया है कि –

"अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण या'4

इसका अर्थ - ईश्वर को परमात्मा मानते हुए भी व्यक्ति को उसके हाथ की कठपुतली नहीं बनना है। जीवन में आने वाले सुख दुःख और भला-बुरे के लिए अपने को ही, यानी आत्मा को ही, किए हुए का कर्ता मानना चाहिए। स्वयं को ही अपने किए हुए कर्म के उत्तरदायी मानेंगे तो प्रकृति में उत्तरदायित्व का निर्धारण हो सकता है।

"जहा कडं कम्म तहासि भारे।"5

'सूत्रकृतांग' के इस श्लोक का अर्थ - जैसे कार्य वैसा फल मिलेगा। यानी व्यक्ति को कर्म करने से पहले उसके फल की ओर सोचने के लिए बाध्य करना आवश्यक है। इसी को धर्म, नीति, नियम, मर्यादा, उत्तरदायित्व, जागरूकता आदि रूपों में देख सकते हैं। जैन धर्म का कर्म सिद्धांत आचार शास्त्र का मूलआधार है। कर्म सिद्धांत में सत्य और असत्य रूपी आचार उनको कर्म फल के रूप में प्राप्त होते हैं।

"आचार शास्त्र का आधार कर्म सिद्धांत है।"6

कर्म फलों के परिणामों को भुगतना मनुष्य का अनिवार्य प्राकृतिक नियम है। इसी कर्म के फल स्वरुप में मनुष्य को दुख, यातना, संत्रास एवं जन्म-मरण होते हैं। इन विचारों का ज्ञान अगर उस मनुष्य में रहेगा तो या वह चाहेगा तो उसके जीवन में सुख, वैभव, यश, प्रतिष्ठा, संतोष, शांति और प्रसन्नता प्राप्त होंगे। यह सब कार्य विधियां आचार के कारण ही होते हैं। जिन आचरणों से कर्म परंपराएं नष्ट होती है। उन्हें आदर्श आचार नहीं मान सकते। भारत भर में अनेकों कर्म सिद्धांत से संबंधित ग्रंथ है। उनमें लिपिबद्ध विधि-निषेध के नियमों का मूलाधार कर्म सिद्धांत ही है। प्रतीक दर्शनों में इसी कर्म सिद्धांत के विभिन्न व्याख्यान किए गए हैं। किसी ने उसे माया, किसी ने प्रकृति, किसी ने अपूर्वता, किसी ने वासना, किसी ने आशय, किसी ने इच्छा, किसी ने संस्कार कहा है, परंतु सभी का मूल तात्पर्य आचार ही है। फल प्रदान करने वाला ईश्वर है तो कर्मानुसार ही वह फल देता है। यह एक नैसर्गिक नियम है। मगर जैन दर्शन में कर्म ही स्वत: कर्म फल देता है।

आचार में कर्म और आत्मा का संबंध

अनादि काल से कर्म और आत्मा का संबंध निश्चित करते आ रहे हैं। उस जीव के कर्म के कारण विविध रूपों में वह रूपांतरित होता है। कहा गया है कि कर्म के कारण ही पुनर्जन्म होता है। जैन दर्शन में कर्म का संवर और निर्जरा को ही'जैनाचार' माना गया है।

"आस्रव: निरोध: संवर:।"7

इसका अर्थ है - संवर में तप की साधना कर कर्म निर्जरित कियो जाते हैं। उससे आत्मा का शुद्ध स्वरूप ज्ञानमय, दर्शनमय, सुखमय, और अनंत वीर्यमय प्रकाट होता है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप को आवृत्त करनेवाले कर्म ही होते हैं। कर्म ज्यों-ज्यों नष्ट होते हैं, त्यों-त्यों उस जीव में आध्यात्मिक कांति चमकने लगती है। इसी अध्यात्मिक कांती को गुणस्थान कहा गया है। जो हमारे आचार और आचरण के कारण ही होता है। इसी तरह अंत में आत्मा कर्म नष्ट कर शुद्ध स्वरूप में प्रकाशित होने लगता है। भारतीय चिंतकों नेकर्म मुक्ति के लिए ज्ञान, भक्ति और ध्यान आचरण करने के लिए कहा है। उन विद्वानों में किसी ने ज्ञान को श्रेष्ठ बताया, किसी ने भक्ति और किसी ने ध्यान को श्रेष्ठ बताया। इसी पहलू को लेकर अनेक आचार के सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं। भारतीय धर्म परंपरा में आचार के विभिन्न नियम और उपनियमों को देख सकते हैं।

आचार की परिचर्चा और उपसंहार

भारतवर्ष को दर्शनों का जन्मस्थली माना जाता है। आदिकाल से भारतवर्ष में अनेक दर्शनों का जन्म और विकास हुआ है। क्रिया और प्रतिक्रिया के कारण ही दर्शनों का उगम होता है। ध्यान और अध्ययन के आधार पर दर्शनों का प्रभाव समाज के ऊपर होता है। भारत में जितने भी दर्शन हुए, उतनी ही आचार परंपराएं भी हुए हैं। दर्शनों में जब वैचारिक मतभेद होता है तो आचार परंपरा में भी मतभेद होना स्वाभाविक है। इन दर्शनों में आचारों को हम पूर्ण सत्य नहीं मान सकते। इन दर्शनों में किसी तत्व को श्रेष्ठ मानकर उनका प्रचार प्रसार हुआ। उन्हें दर्शनों में निहित नीति नियमों को लेकर आचार परंपराएं भी प्रचार-प्रसार में आए। उदाहरण के रूप में देखा जाए तो आचार्य पतंजलि अपने योग दर्शन में आचार का विश्लेषण किया है मगर वही आचार्य वेद दर्शन में योग का विश्लेषण नहीं किया। पतंजलि अपने योग सूत्र में कहा है कि-

"एते जातिदेशकाले समयानवच्छिन्ना: सार्वभौमा: महाव्रतम्।"
"त्रयमंतरंगपूर्वेभ्य:।" 8

इसका अर्थ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह कहा गया है। आगे चलकर उन्हीं को महाव्रतों का नाम दिया गया है। पतंजली ने योग का अंतरंग कारण न मानकर बहिरंग कारण माना है। आसन, यम, नियम, प्राणायाम और प्रत्याहारों को योग के बहिरंग कारण कहते हैं। इन्हीं विचारों को आगे चलकर भारत भर के सभी आचार परंपराओं में वर्णित किया गए हैं। समाज के निर्माण के साथ ही आचार और धर्म का भी आविर्भाव होता है। जिस समाज में आचार और धर्म के नियम जितने अधिक व्यापक और उदार होते हैं, उस समाज को उतना ही अधिक उत्कृष्ट समझा जाता है। समाज को स्थिर संपन्न और समृद्ध बनाने के लिए आचार और धर्म को जीवन में अपनाना पड़ेगा। भारतीय आचार परंपरा अंतर्गत वैदिक काल में राम और कृष्ण को आचारवान पुरुषों के रूप में देखा गया है। भारतीय संस्कृति में जीवन के विकास के लिए आचार को आवश्यक माना गया है तो पाश्चात्य आचार परंपराओं में यीशु मूसा और मोहम्मद के उपदेशों मे प्रेम, सेवा, दान और उदारता के गुणों को आचरण पद्धति में लाने की कोशिश करते हैं। ज्यादातर पाश्चात्य विचारक बाइबल और कुरान के विचारों को अपने अचार पद्धति में प्रस्तुत करते हैं। आचार का मनोविज्ञान के साथ सीधा संबंध है। धर्म, दर्शन और तथ्य इन तीनों तत्व मानव जीवन के विकास के लिए आवश्यक है। समाज के उज्जवल भविष्य के लिए व्यक्ति और समाज दोनों के आचार एवं व्यवहार एक दूसरे के अनुकूल रहना चाहिए।

आधार ग्रंथ सूची

1. मनुस्मृति प्रथम खण्ड पृ.सं. 207 और व्यास का महाभारत 13 अध्याय. पृ.सं. 149
2. महाभारत, वेद व्यास, अनुशासन पर्व का श्लोक।
3. जैन आचार : सिद्धांत और स्वरूप, देवेन्द्र मुनि शास्त्री, पृ. सं. 11
4. उत्तराध्ययन, आचार्य आत्माराम जी महाराज, शान्त्याचार्य टीका, पृ. सं. 37
5. सूत्रकृतांग, आचार्य सोमप्रभ सूरी, पंचम अध्याय पृ.सं.26
6. जैन आचार : सिद्धांत और स्वरूप, देवेन्द्र मुनि शास्त्री, पृ. सं. 13
7. तत्वार्थसूत्र, उमास्वामी, अध्याय 9 का श्लोक
8. पतंजली - योगसूत्र, 2. पृ.सं. 31 s